इकाई 5 नपुंसकलिंग शब्द (ज्ञान और वारि)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 ज्ञान शब्द की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या
5.3 ज्ञान शब्द की रूपसिद्धि की प्रक्रिया
5.4 वारि शब्द की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या
5.5 वारि शब्द के विविध रूपों की सिद्धि
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.9 अभ्यास प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- लघुसिद्धान्तकौमुदी के अजन्त नपुंसकलिङ्ग भाग से परिचित हो सकेंगे;
- अकारान्त एवं इकारान्त शब्दों के नपुंसकलिङ्ग में रूपों को जान सकेंगे;
- इन शब्दरूपों से सम्बन्धित सूत्रों व वार्तिकों, उनके अर्थ व व्याख्या और उदाहरणों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- इन शब्दों की रूपसिद्धि प्रक्रिया को जान सकेंगे;
- प्रत्ययलोप में होने वाले प्रत्ययाश्रित कार्य के निषेध स्थल को जान सकेंगे; तथा
- इस इकाई में प्राप्त ज्ञान का व्यावहारिक रूप में प्रयोग करने में समर्थ हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने अजन्त स्त्रीलिङ्ग प्रकरण का अध्ययन किया था। इसके बाद अब हम इस इकाई में अजन्त पुँल्लिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग प्रकरण के बाद क्रमानुसार आने वाले अजन्त नपुंसकलिङ्ग प्रकरण का अध्ययन करेंगे। नपुंसकलिङ्ग शब्दों के बहुत अधिक भेद भी नहीं प्राप्त होते हैं तथा नपुंसकलिङ्ग तथा पुँल्लिङ्ग के शब्दों के स्वरूप में बहुत अधिक अन्तर भी नहीं होता है। साथ ही नपुंसकलिङ्ग के शब्द में तृतीया से लेकर सप्तमी तक के रूप पुँल्लिङ्ग के समान ही होते हैं। इसके साथ ही प्रथमा विभक्ति के रूप और द्वितीया विभक्ति के रूप एक जैसे परन्तु पुँल्लिङ्ग से भिन्न होते हैं। इस प्रकरण में हमें पाठ्यक्रम के अनुरोध से दो शब्दों– ज्ञान एवं वारि शब्दों की प्रक्रिया में आने वाले विशेष सूत्रों एवं वार्तिकों,

उनके अर्थों एवं उदाहरणों का अध्ययन करना है। इस प्रकार यदि संक्षेप में कहा जाए तो इस अन्विति में नपुंसकलिङ्ग की प्रक्रिया में आने वाली विशेषताओं का विधान करने वाले सूत्रों और वार्तिकों को उदाहरण एवं व्याख्या के द्वारा प्रदर्शित किया जाएगा।

5.2 ज्ञान शब्द की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या

सूत्र – अतोऽम् 7/1/24

वृत्ति – अतोऽङ्गात् क्लीबात् स्वमोरम्। अमि पूर्वः। ज्ञानम्। 'एङ्ह्रस्वादिति हल्लोपः। हे ज्ञान।

सूत्रार्थ – अकारान्त (अदन्त) नपुंसक अङ्ग से परे सु और अम् के स्थान पर अम् आदेश होता है। (हे ज्ञान–में) 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' इस सूत्र से हल् (सम्बोधन एकवचन में 'हे ज्ञानम्' के 'म्') का लोप होता है।

उदाहरण – ज्ञानम्। हे ज्ञान

व्याख्या – यह प्रत्यय विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं – अतः व अम्। 'अतः' पञ्चम्यन्त पद है, 'अम्' प्रथमान्त पद है। इस सूत्र में 'स्वमोर्नपुंसकात्' इस सम्पूर्ण सूत्र अर्थात् 'स्वमोः' व 'नपुंसकात्' इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है और 'अङ्गस्य' सूत्र का अधिकार भी है।

यह सूत्र 'स्वमोर्नपुंसकात् सूत्र का बाध करता है। नपुंसकलिङ्ग में 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से सम्पूर्ण सु और अम् के लुक् (लोप) की प्राप्ति हो रही थी जिसका बाध करके इस सूत्र के द्वारा ह्रस्व अकारान्त शब्दों से परे स्थित सु और अम् इन दोनों प्रत्ययों के स्थान पर अम् आदेश का विधान किया जाता है। अम् के स्थान पर पुनः अम् आदेश का विधान इसलिए किया गया है क्योंकि महाभाष्यकार आचार्य पतञ्जलि कहते हैं द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति। अम् इस आदेश के अनेकाल् होने से 'अनेकाल्शित् सर्वस्य' इस परिभाषा के परामर्श से यहाँ सर्वादेश होता है अर्थात् सम्पूर्ण सु और अम् के स्थान पर अम् आदेश का विधान होता है। अवधातव्य है कि सु और अम् प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होती है अतः उसके स्थान पर विहित अम् आदेश की भी विभक्ति संज्ञा मानी जाती है। अतः अम् के मकार की 'हलन्त्यम्' से प्राप्त इत् संज्ञा का 'न विभक्तौ तुस्माः' सूत्र द्वारा निषेध हो जाएगा।

'एङ्ह्रस्वात्' इति हल्लोपः – सम्बोधन के एकवचन की 'एकवचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञा होकर 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' से सम्बुद्धि के हल् – अर्थात् मकार का लोप करने पर – हे ज्ञान यह रूप सिद्ध होता है।

सूत्र – नपुंसकाच्च 7/1/19

वृत्ति – क्लीबादौङः शी स्यात्। भसंज्ञायाम्।

सूत्रार्थ – नपुंसक (अङ्ग) औङ् (औ विभक्ति) के स्थान पर शी आदेश होता है, भ संज्ञा होने पर।

व्याख्या – यह आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं – नपुंसकात् एवं च। 'नपुंसकात्' पञ्चम्यन्त पद है, 'च' अव्यय पद है। इस सूत्र में 'औङ आपः' से 'औङः' तथा 'जशः शी' से 'शी' की अनुवृत्ति आती है। ये दोनों सूत्र केवल नपुंसकलिङ्ग में ही लगते हैं। यहाँ 'अङ्गस्य' सूत्र का अधिकार भी आता है। शी प्रत्यय के आदि में स्थित शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' से लोप होकर 'ई' शेष रहता है। यहाँ/ध्यातव्य है कि 'औङ् इत्यौकारविभक्तेः संज्ञा' – इस वचन के अनुसार प्रथमा व द्वितीया के द्विवचन की औङ् यह संज्ञा समझनी चाहिए।

भसंज्ञायाम् – ध्यातव्य है कि शी प्रत्यय होकर तथा उसके अनुबन्धादि कार्य के उपरान्त ज्ञान+ई इस स्थिति में 'यचि भम्' सूत्र से सर्वनामस्थानभिन्न अजादि स्वादि प्रत्यय (ई) के परे रहते उसके पूर्व में वर्तमान प्रकृति (ज्ञान) की भ संज्ञा हो जाती है और इसके बाद अग्रिम सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

सूत्र – यस्येति च 6/4/148

वृत्ति – ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णयोर्लोपः। इत्यल्लोपे प्राप्ते।

सूत्रार्थ – ईकार और तद्धित के परे 'भ' संज्ञक इवर्ण और अवर्ण का लोप होता है। इस प्रकार अल् लोप की प्राप्ति होने पर।

व्याख्या – यह लोप विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं – यस्य, ईति एवं च। 'यस्य' षष्ठ्यन्त पद है, 'ईति' सप्तम्यन्त पद है तथा 'च' अव्यय पद है। इस सूत्र में 'नस्तद्धिते' से 'तद्धिते' तथा 'अल्लोपो नः' से 'लोपः' की अनुवृत्ति आती है और 'भस्य' सूत्र का अधिकार भी आ रहा है। सूत्रस्थ 'यस्येति' का पदच्छेद यस्य+ईति है। ईश्च अश्च यम्, तस्य = यस्य, समाहारद्वन्द्वः अर्थात् ई और अ का समाहार द्वन्द्व समास होकर तथा इसके षष्ठी एकवचन में 'यस्य' यह रूप बनता है, जिसका अर्थ होता है – इवर्ण और अवर्ण का।

यहाँ 'नपुंसकाच्च' सूत्र से नपुंसक ज्ञान शब्द से परे औ विभक्ति के स्थान पर शी आदेश (जो अनुबन्धादि कार्य के बाद – ई के रूप में विद्यमान है) का विधान किया गया है। अब ज्ञान+ई इस अवस्था में ज्ञान शब्द की 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' इस सूत्र से अङ्ग संज्ञा हो जाती है तथा 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' सूत्र के द्वारा स्थानिवद्भाव होने से शी में प्रत्ययत्व भी आता ही है। इसके बाद ज्ञान+ई इस अवस्था में सर्वनामस्थानभिन्न अजादि स्वादि प्रत्यय (ई) के परे रहते उसके पूर्व में वर्तमान प्रकृति (ज्ञान) की भ संज्ञा हो जाती है।

इत्यल्लोपे प्राप्ते – अब भ संज्ञक ज्ञान शब्द से ई प्रत्यय के परे रहते वर्तमान सूत्र 'यस्येति च' के द्वारा ज्ञान शब्द के अन्त में स्थित अकार के लोप की प्राप्ति हो रही है। ऐसी स्थिति में इसका प्रतिषेध करने के लिए अग्रिम वार्तिक आता है।

वार्तिक – औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः।

अर्थ – औङ् के स्थान पर किए गए शी आदेश के परे होने पर 'यस्येति च' सूत्र के द्वारा किए गए कार्य का प्रतिषेध कहना चाहिए।

उदाहरण – ज्ञाने।

व्याख्या – औङ् अर्थात् औ विभक्ति के स्थान पर किए गए शी आदेश के परे होने पर पूर्व सूत्र 'यस्येति च' सूत्र के द्वारा किए गए कार्य (अकार के लोप) का प्रतिषेध कहना चाहिए अर्थात् 'यस्येति च' सूत्र ईकार और तद्धित के परे भ संज्ञक इ वर्ण और अ वर्ण का लोप अन्यत्र तो कर सकता है किन्तु 'नपुंसकाच्च' सूत्र के द्वारा औ विभक्ति के स्थान पर किए गए शी आदेश के (अनुबन्धादि कार्य के बाद शेष) ईकार के परे रहते 'यस्येति च' सूत्र के द्वारा किये जा रहे लोप कार्य का प्रकृत वार्तिक के द्वारा निषेध कर दिया जाता है। जिसके फलस्वरूप ज्ञान+ई इस अवस्था में भ संज्ञक ज्ञान शब्द से ई के परे रहने पर भी 'यस्येति च' सूत्र के द्वारा ज्ञान शब्द के अन्त में स्थित अकार का लोप नहीं हो पाता है और 'आद्गुणः' से गुण हो जाता है।

सूत्र – जश्शसोः शिः 7/1/20

वृत्ति – क्लीबादनयोः शिः स्यात्।

सूत्रार्थ – नपुंसकलिङ्ग शब्द से परे इन दोनों (जश् और शस्) के स्थान पर शि आदेश होता है।

व्याख्या – यह शि आदेश विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं – जश्शसोः एवं शिः। 'जश्शसोः' षष्ठ्यन्त पद है तथा 'शिः' प्रथमान्त पद है। इस सूत्र में 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से 'नपुंसकात्' पद की अनुवृत्ति आती है।

स्थानिवद्भाव होने से शि में प्रत्ययत्व होता ही है इसलिए प्रत्यय के आदि में स्थित शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा तथा लोप होकर इ शेष रहता है। यहाँ यह भी समझना चाहिए कि 'नपुंसकाच्च' सूत्र द्वारा प्रथमा व द्वितीया द्विवचन के औ प्रत्यय के स्थान पर किए गए शी तथा प्रकृत सूत्र से प्रथमा व द्वितीया बहुवचन के जस् और शस् के स्थान पर विहित शि आदेश में केवल ह्रस्व व दीर्घ इकार का भेद हैं। 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' अर्थात् प्रयोजन के बिना तो मन्द से मन्द व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता – इस सूक्ति के द्वारा इतना तो स्पष्ट है कि इन दोनों प्रत्ययों में भिन्नता निश्चय ही किसी न किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए की गई है। अतः ह्रस्व इकारान्त शि आदेश करने का प्रयोजन क्या है? यह अग्रिम सूत्र में स्पष्ट हो जाएगा।

सूत्र – शि सर्वनामस्थानम् 1/1/42

वृत्ति – शि इत्येतदुक्तसंज्ञं स्यात् ।

सूत्रार्थ – शि इस आदेश की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है।

व्याख्या – यह सर्वनामस्थान संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं – शि तथा सर्वनामस्थानम्। 'शि' लुप्तप्रथमान्त पद है तथा 'सर्वनामस्थानम्' प्रथमान्त पद है। इस सूत्र में किसी अन्य सूत्र से किसी भी पद की अनुवृत्ति नहीं आती है।

सर्वनामस्थान संज्ञा का विधान करने वाला मुख्य सूत्र 'सुडनपुंसकस्य' है। इस सूत्र के द्वारा नपुंसकलिङ्ग से भिन्न सुट् प्रत्याहार – अर्थात् सु, औ, जस्, अम् और औट् इन पांच प्रत्ययों की सर्वनामस्थान संज्ञा करता है। इस प्रकार नपुंसकलिङ्ग में इस सर्वनामस्थान संज्ञा की प्राप्ति ही नहीं थी और सुट् प्रत्याहार के अन्तर्गत न आने से शस् की तो किसी भी लिङ्ग में यह संज्ञा होती ही नहीं है। अतः इष्ट प्रयोगों की सिद्धि के लिए नपुंसकलिङ्ग में सर्वथा अप्राप्त सर्वनामस्थान संज्ञा जस् व शस् – इन दोनों प्रत्ययों को विहित हो जाए – इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रकृत सूत्र का प्रस्तवन सूत्रकार आचार्य ने किया है। 'या या संज्ञा सा फलवती' अर्थात् प्रत्येक संज्ञा का कोई न कोई फल अवश्य होता है – इस नियम से इस संज्ञा का कोई न कोई फल भी अवश्य होगा – जिसका विस्तारपूर्वक विवेचन अग्रिम सूत्र में प्रस्तुत किया जाएगा।

सूत्र – नपुंसकस्य झलचः 7/1/72

वृत्ति – झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने।

सूत्रार्थ – नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान झलन्त एवं अजन्त शब्द को सर्वनामस्थान परे रहते नुम् का आगम होता है।

व्याख्या – यह नुम् आगम विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं – नपुंसकस्य तथा झलचः। 'नपुंसकस्य' षष्ठ्यन्त पद है तथा 'झलचः' भी षष्ठ्यन्त पद है। इस सूत्र में 'इदितो नुम् धातोः' सूत्र से 'नुम्' पद की तथा 'उगिदचां सर्वनामस्थाने चाऽधातोः' सूत्र से 'सर्वनामस्थाने' पद की अनुवृत्ति आती है।

ध्यातव्य है कि 'जश्शसोः शिः' से जश् व शस् के स्थान पर शि आदेश करने का प्रयोजन 'शि सर्वनामस्थानम्' से शि की सर्वनामस्थान संज्ञा करना तथा सर्वनामस्थान संज्ञा करने का प्रयोजन वर्तमान सूत्र द्वारा किया जा रहा नुम् का आगम है।

सूत्र – मिदचोऽन्त्यात्परः 1/1/47

वृत्ति – अचां मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्तावयवो मित्स्यात्। उपधादीर्घः। ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुंवत्। एवं धनवनफलादयः।

सूत्रार्थ – अचों के मध्य में जो अन्तिम अच् उससे परे तथा उसका ही अन्तावयव होकर मित् आगम होता है। (ज्ञानानि में) उपधा को दीर्घ होता है। पुनस्तद्वत् अर्थात् द्वितीया में भी प्रथमा की तरह ही रूप होते हैं। शेषं पुंवत् – अर्थात् शेष रूप (तृतीया से सप्तमी तक) पुँल्लिङ्ग

की तरह होते हैं। एवं धनवनफलादयः – अर्थात् ज्ञान की तरह ही धन, वन, फल आदि के रूप भी होते हैं।

उदाहरण – ज्ञानानि

व्याख्या – यह परिभाषा सूत्र है। इस सूत्र में चार पद हैं – मित्, अचः, अन्त्यात् तथा परः। 'मित्' प्रथमान्त पद है, 'अचः' षष्ठ्यन्त पद है, 'अन्त्यात्' पञ्चम्यन्त पद है तथा 'परः' प्रथमान्त पद है।

जिस तरह 'आद्यन्तौ टकितौ' इस परिभाषा सूत्र द्वारा टित् व कित् होने पर क्रमशः आदि तथा अन्त का अवयव होना विहित किया जाता है उसी तरह वर्तमान सूत्र मित् (जिसमें मकार की इत् संज्ञा हुई हो – जैसे नुम् आदि) आगम के विषय में व्यवस्था करता है। इस सूत्र के अनुसार जो आगम मित् होता है अर्थात् जिस आगम में मकार की इत् संज्ञा हुई हो, वह आगम, जिस समुदाय को विहित किया गया हो, उस समुदाय के अचों में जो अन्तिम अच्, मित् उसका अन्तावयव होकर स्थित होता है चाहे उस अन्तिम अच् के बाद कोई हल् वर्ण भी हो तो भी मित् आगम अन्तिम अच् के बाद और हल् वर्ण से पहले ही घटेगा।

पुनस्तद्वत् – वृत्ति में पढे गए 'पुनस्तद्वत्' का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों के रूप सिद्ध होते हैं उसी प्रकार द्वितीया के रूप भी बनेंगे।

शेषं पुंवत् – वहीं आगे कहे गए 'शेषं पुंवत्' से यह तात्पर्य है कि अकारान्त नपुंसक ज्ञान शब्द के तृतीया से सप्तमी तक के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के समान ही होती है अर्थात् इन विभक्तियों की सिद्धि प्रक्रिया में कोई नवीनता नहीं है अतः उसे फिर से बताने की आवश्यकता नहीं है।

एवं धनवनफलादयः – अर्थात् धन, वन, फल आदि सभी अकारान्त नपुंसकलिङ्ग के शब्दों के रूप एवं उनकी प्रक्रिया ज्ञान शब्द के समान ही होगी अर्थात् हमें यह ध्यान रख लेना चाहिए कि नपुंसकलिङ्ग में सभी अजन्त शब्दों के रूप प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति में एक बनेंगे और तृतीया से सप्तमी तक के रूप अजन्त पुल्लिङ्ग शब्दों के समान बनेंगे।

5.3 ज्ञान शब्द की रूपसिद्धि की प्रक्रिया

1) ज्ञानम् – ज्ञायते इति – इस विग्रह में क्रयादिगणीय तथा परस्मैपदी 'ज्ञा अवबोधने' धातु से भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करके ज्ञा+ल्युट् इस अवस्था में ल्युट् के ल् व ट् की क्रमशः 'लशक्वतद्धिते' व 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा, 'अदर्शनं लोपः' से इनका लोप तथा अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर ज्ञा+यु इस स्थिति में 'युवोरनाकौ' सूत्र से 'यु' को 'अन' आदेश एवं सन्धि आदि होकर ज्ञान शब्द निष्पन्न होता है। ज्ञान शब्द का अर्थ है जानना।

यह ज्ञान शब्द नपुंसकलिङ्ग का एवं अकारान्त है। इस अकारान्त ज्ञान शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्......' सूत्र से सु प्रत्यय होकर ज्ञान+सु बना।

अब ज्ञान+सु इस अवस्था में सु के उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से इसका लोप तथा 'अदर्शनं लोपः' से अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर ज्ञान+स् बनता है। अब ज्ञान, स् इस स्थिति में नपुंसकलिङ्ग से परे होने के कारण सु के सकार को 'स्वमोर्नपुंसकात्' इस सूत्र से लुक् की प्राप्ति हुई। परन्तु अकारान्त नपुंसकलिङ्ग होने के कारण 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से प्राप्त सु के लुक् को बाधकर 'अतोऽम्' इस सूत्र से अम् आदेश होकर ज्ञान+अम् बना। यहाँ ज्ञान शब्द के अन्त में स्थित अकार अक् प्रत्याहार के अन्तर्गत तथा उससे परे अम् के आदि में स्थित अकार अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है, अतः ऐसी स्थिति में अक् से अम् सम्बन्धी अच् के परे होने के कारण 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होता है। इस तरह प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'ज्ञानम्' यह रूप सिद्ध होता है।

2) **ज्ञाने** – अकारान्त ज्ञान शब्द से प्रथमा विभक्ति के द्विवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्शस्. ....' सूत्र से औ प्रत्यय होकर ज्ञान+औ बना। अब ज्ञान+औ इस अवस्था में अकार से एच् परे रहते 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि की प्राप्ति होती है। इसको बाधकर 'नपुंसकाच्च' सूत्र से औ के स्थान पर शी आदेश होता है। अनुबन्धादि कार्य के बाद ज्ञान+ई इस स्थिति में 'यचि भम्' सूत्र से ज्ञान शब्द की भ संज्ञा हो जाती है। अब ज्ञान+ई इस अवस्था में भ संज्ञक ज्ञान शब्द से ई के परे रहते 'यस्येति च' के द्वारा ज्ञान शब्द के नकारोत्तरवर्ती अकार के लोप की प्राप्ति होती है, जिसका 'औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः' इस वार्तिक के द्वारा निषेध कर दिया जाता है। अब ज्ञान+ई इस अवस्था में 'आद् गुणः' सूत्र से गुण होकर 'ज्ञाने' यह रूप सिद्ध होता है।

3) **ज्ञानानि** – प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में ज्ञान शब्द से जस् प्रत्यय होकर ज्ञान+जस् बना। जस् प्रत्यय इत्संज्ञादि कार्य होकर ज्ञान+अस् बनता है। अब ज्ञान+अस् इस स्थिति में अस् के स्थान पर 'जश्शसोः शिः' इस सूत्र से शि आदेश इत् संज्ञा व लोप होकर ज्ञान+इ बना। अब सर्वनामस्थान संज्ञा करने के बाद 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते नपुंसक अजन्त ज्ञान को नुम् आगम होता है। नुम् न् शेष रहता है। 'मिदचोऽन्त्यात् परः' सूत्र की व्यवस्था के अनुसार नकारोत्तरवर्ती अकार का अन्तावयव होकर ज्ञान+न्+इ बना। अब उपधा संज्ञा और 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से' दीर्घ होकर ज्ञानान्+इ बना। एतदनन्तर वर्ण सम्मेलन होकर 'ज्ञानानि' यह रूप सिद्ध होता है।

4) **हे ज्ञान!** – सम्बोधन एकवचन में ज्ञान शब्द से सु, सु की विभक्ति संज्ञा, सु के उकार की इत् संज्ञा, लोप आदि कार्य, अम् आदेश तथा पूर्वरूप होकर ज्ञानम् बनता है। इस अवस्था में अम् के मकार की प्राप्त इत् संज्ञा का विभक्ति सम्बन्धी मकार होने के कारण 'न विभक्तौ तुस्माः' इस सूत्र से निषेध हो जाता है। ऐसी स्थिति में पूर्वरूप होकर ज्ञानम् बना। पुनः सम्बोधन के एकवचन की 'एकवचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञा होकर 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' से सम्बुद्धि के हल् – अर्थात् मकार का लोप करने पर तथा हे का पूर्व प्रयोग करने के पश्चात् 'हे ज्ञान!' यह रूप सिद्ध होता है।

5) हे ज्ञाने! – सम्बोधन के द्विवचन में ज्ञान शब्द से औ प्रत्यय होकर ज्ञान+औ बना। अब ज्ञान+औ इस अवस्था में अकार से एच् परे रहते 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि की प्राप्ति होती है। इसको बाधकर 'नपुंसकाच्च' सूत्र से औ के स्थान पर शी आदेश होता है। अनुबन्धादि कार्य के बाद ज्ञान+ई इस स्थिति में 'यचि भम्' सूत्र से ज्ञान शब्द की भ संज्ञा हो जाती है। अब ज्ञान+ई इस अवस्था में भ संज्ञक ज्ञान शब्द से ई के परे रहते 'यस्येति च' के द्वारा ज्ञान शब्द के नकारोत्तरवर्ती अकार के लोप की प्राप्ति होती है, जिसका 'औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः' इस वार्तिक के द्वारा निषेध कर दिया जाता है। अब ज्ञान+ई इस अवस्था में 'आद् गुणः' सूत्र से गुण होकर तथा हे का पूर्वप्रयोग करने के पश्चात् 'हे ज्ञाने!' यह रूप सिद्ध होता है।

6) हे ज्ञानानि! – सम्बोधन के बहुवचन में ज्ञान शब्द से जस् प्रत्यय होकर ज्ञान+जस् बना। जस् प्रत्यय इत्संज्ञादि कार्य होकर ज्ञान+अस् बनता है। अब ज्ञान+अस् इस स्थिति में अस् के स्थान पर 'जश्शसोः शिः' इस सूत्र से शि आदेश इत् संज्ञा व लोप होकर ज्ञान+इ बना। अब सर्वनामस्थान संज्ञा करने के बाद 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते नपुंसक अजन्त ज्ञान को नुम् आगम होता है। नुम् न् शेष रहता है। 'मिदचोऽन्त्यात् परः' सूत्र की व्यवस्था के अनुसार नकारोत्तरवर्ती अकार का अन्तावयव होकर ज्ञान+न्+इ बना। अब उपधा संज्ञा और 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ से' दीर्घ होकर ज्ञानान्+इ बना। एतदनन्तर वर्ण सम्मेलन होकर तथा हे का पूर्वप्रयोग करने के पश्चात् 'हे ज्ञानानि!' यह रूप सिद्ध होता है।

7) ज्ञानम् – ज्ञान शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्.....' सूत्र से अम् प्रत्यय होकर अब ज्ञान+अम् इस अवस्था में अम् के मकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा की प्राप्ति होती है जिसका विभक्ति सम्बन्धी मकार होने के कारण 'न विभक्तौ तुस्माः' इस सूत्र से निषेध हो जाता है। अब इस स्थिति में नपुंसकलिङ्ग से परे होने के कारण 'स्वमोर्नपुंसकात्' इस सूत्र से लुक् की प्राप्ति हुई। परन्तु अकारान्त नपुंसकलिङ्ग होने के कारण 'स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से प्राप्त लुक् को बाधकर 'अतोऽम्' इस सूत्र से अम् आदेश होकर ज्ञान+अम् बना। यहाँ ज्ञान शब्द के अन्त में स्थित अकार अक् प्रत्याहार के अन्तर्गत तथा उससे परे अम् के आदि में स्थित अकार अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत आता है, अतः ऐसी स्थिति में अक् से अम् सम्बन्धी अच् के परे होने के कारण 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होता है। इस तरह द्वितीया विभक्ति के एकवचन में 'ज्ञानम्' यह रूप सिद्ध होता है।

8) ज्ञाने – अकारान्त ज्ञान शब्द से द्वितीया विभक्ति के द्विवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्शस्. ....' सूत्र से औट् प्रत्यय होकर ट् की इत् संज्ञा एवं लोप के उपरान्त ज्ञान+औ बना। अब ज्ञान+औ इस अवस्था में अकार से एच् परे रहते 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि की प्राप्ति होती है। इसको बाधकर 'नपुंसकाच्च' सूत्र से औ के स्थान पर शी आदेश होता है। अनुबन्धादि कार्य के बाद ज्ञान+ई इस स्थिति में 'यचि भम्' सूत्र से ज्ञान शब्द की भ संज्ञा हो जाती है। अब ज्ञान+ई इस अवस्था में भसंज्ञक ज्ञान शब्द से ई के परे रहते 'यस्येति च' के द्वारा ज्ञान शब्द के नकारोत्तरवर्ती अकार के लोप की प्राप्ति होती है, जिसका 'औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः' इस

वार्तिक के द्वारा निषेध कर दिया जाता है। अब ज्ञान+ई इस अवस्था में 'आद् गुणः' सूत्र से गुण होकर 'ज्ञाने' – यह रूप सिद्ध होता है।

9) ज्ञानानि – नपुंसकलिङ्ग एवं अकारान्त ज्ञान शब्द से द्वितीया विभक्ति के बहुवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्शस्........' सूत्र से शस् प्रत्यय होकर ज्ञान+शस् बना। अब ज्ञान+शस् इस अवस्था में शस् के शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से लोप तथा 'अदर्शनं लोपः' से अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर ज्ञान+अस् बनता है। अब ज्ञान+अस् इस स्थिति में अस् के स्थान पर 'जश्शसोः शिः' इस सूत्र से शि आदेश हुआ तथा शि के शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से लोप होकर ज्ञान+इ बना। शि के इकार की 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। सर्वनामस्थान संज्ञा के बाद 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञक, इ के परे रहते नपुंसक तथा अजन्त ज्ञान को नुम् आगम होता है। नुम् के मकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर दोनों का 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है और फिर नुम् का न् शेष रहता है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह ज्ञान को विहित न् उसके आदि, मध्य या अन्त कहाँ स्थित हो? इस अनियम की स्थिति में नियम करने के लिए 'मिदचोऽन्त्यात् परः' यह परिभाषा सूत्र उपस्थित होता है। इस सूत्र की व्यवस्था के अनुसार ज्ञान शब्द के अचों में अन्तिम अच् अर्थात् नकारोत्तरवर्ती अकार का अन्तावयव होकर अर्थात् उसके बाद नुम् का नकार स्थित होगा। इस व्यवस्था के बाद ज्ञान+न्+इ बना। अब ज्ञानन् के अन्तिम अल् न् से पूर्व के वर्ण अ (ज्ञान का नकारोत्तरवर्ती) की 'अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा' सूत्र से उपधा संज्ञा होती है और फिर उसे सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' दीर्घ होकर ज्ञानान्+इ बना। फिर वर्ण सम्मेलन होकर 'ज्ञानानि' यह रूप सिद्ध होता है।

इस प्रकार प्रथमा तथा द्वितीया के एकवचन में आने वाले सु एवं अम् के स्थान पर अम् यह समान आदेश तथा पूर्वरूप होकर दोनों विभक्तियों में समान रूप से ज्ञानम् यह रूप बनता है। इसी तरह इन दोनों विभक्तियों के द्विवचन में औ व औट् प्रत्ययों के स्थान पर शी आदेश तथा गुण होकर समान रूप ज्ञाने बनता है एवं बहुवचन में भी जस् व शस् के स्थान पर शि आदेश, सर्वनामस्थान संज्ञा, नुम् आगम एवं उपधा को दीर्घ होकर ज्ञानानि यह रूप बनता है।

10) ज्ञानेन – तृतीया विभक्ति के एकवचन में ज्ञान शब्द से टा प्रत्यय टकार की इत्संज्ञालोप टा के आकार के स्थान पर इन आदेश तथा गुण होकर 'ज्ञानेन' सिद्ध होता है।

11) ज्ञानाभ्याम् – तृतीया विभक्ति के द्विवचन में ज्ञान शब्द से भ्याम् प्रत्यय अङ्गसञ्ज्ञा तथा सुपि च से दीर्घ होकर 'ज्ञानाभ्याम्' सिद्ध होता है।

12) ज्ञानैः – तृतीया विभक्ति के बहुवचन में ज्ञान शब्द से भिस् प्रत्यय भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश होकर ज्ञान+ऐस् इस अवस्था में वृद्धि तथा रुत्व विसर्ग होकर 'ज्ञानैः' सिद्ध होता है।

13) **ज्ञानाय** – चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में ज्ञान शब्द से ङे प्रत्यय, इत्सञ्ज्ञालोपादि कार्य, ङेर्यः से ङि को य आदेश, अङ्गसञ्ज्ञा तथा सुपि च से दीर्घ होकर 'ज्ञानाय' सिद्ध होता है।

14) **ज्ञानाभ्याम्** – चतुर्थी विभक्ति के द्विवचन में ज्ञान शब्द से भ्याम् प्रत्यय, अङ्गसंज्ञा तथा सुपि च से दीर्घ होकर 'ज्ञानाभ्याम्' सिद्ध होता है।

15) **ज्ञानेभ्यः** – चतुर्थी विभक्ति के बहुवचन में ज्ञान शब्द से भ्यस् प्रत्यय, बहुवचने झल्येत् से एत्व तथा रुत्व विसर्ग होकर 'ज्ञानेभ्यः' सिद्ध होता है।

16) **ज्ञानात्** – पंचमी विभक्ति के एकवचन में ज्ञान शब्द से ङसि प्रत्यय, इत्सञ्ज्ञालोपादि के बाद 'टाङसिङसामिनात्स्याः' सूत्र से आत् आदेश तथा सवर्णदीर्घ होकर 'ज्ञानात्' सिद्ध होता है।

17) **ज्ञानाभ्याम्** – पंचमी विभक्ति के द्विवचन में ज्ञान शब्द से भ्याम् प्रत्यय, अङ्गसञ्ज्ञा तथा सुपि च से दीर्घ होकर 'ज्ञानाभ्याम्' सिद्ध होता है।

18) **ज्ञानेभ्यः** – पंचमी विभक्ति के बहुवचन में ज्ञान शब्द से भ्यस् प्रत्यय, बहुवचने झल्येत् से एत्व तथा रुत्व विसर्ग होकर 'ज्ञानेभ्यः' सिद्ध होता है।

19) **ज्ञानस्य** – षष्ठी विभक्ति के एकवचन में ज्ञान शब्द से ङस् प्रत्यय, इत्सञ्ज्ञादि होकर पुनः 'टाङसिङसामिनात्स्याः' सूत्र से स्य आदेश के बाद वर्णसम्मेलन होकर 'ज्ञानस्य' सिद्ध होता है।

20) **ज्ञानयोः** – षष्ठी विभक्ति के द्विवचन में ज्ञान शब्द से ओस् प्रत्यय, गुण वृद्धि का बाध होकर ओसि च से एत्व , अयादेश तथा रुत्व विसर्ग होकर 'ज्ञानयोः' सिद्ध होता है।

21) **ज्ञानानाम्** – षष्ठी विभक्ति के बहुवचन में ज्ञान शब्द से आम् प्रत्यय, नुट् आगम तथा इत्सञ्ज्ञादि के बाद नामि से दीर्घ होकर 'ज्ञानानाम्' सिद्ध होता है।

22) **ज्ञाने** – सप्तमी विभक्ति के एकवचन में ज्ञान शब्द से ङि प्रत्यय, इत्सञ्ज्ञादि तथा गुण होकर 'ज्ञाने' सिद्ध होता है।

23) **ज्ञानयोः** – सप्तमी विभक्ति के द्विवचन में ज्ञान शब्द से ओस् प्रत्यय, गुण वृद्धि का बाध होकर ओसि च से एत्व, अयादेश तथा रुत्व विसर्ग होकर 'ज्ञानयोः' सिद्ध होता है।

24) **ज्ञानेषु** – सप्तमी विभक्ति के बहुवचन में ज्ञान शब्द से सुप् प्रत्यय, बहुवचने झल्येत् से एत्व तथा आदेशप्रत्यययोः से षत्व होकर 'ज्ञानेषु' सिद्ध होता है।

5.4 वारि शब्द की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या

सूत्र – स्वमोर्नपुंसकात् 7/1/23

वृत्ति – लुक् स्यात्। वारि।

सूत्रार्थ – नपुंसक शब्द से परे सु एवं अम् का लुक् होता है।

उदाहरण – वारि

व्याख्या – यह लुक् विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में दो पद हैं – स्वमोः और नपुंसकात्। 'स्वमोः' षष्ठ्यन्त पद है और 'नपुंसकात्' यह पञ्चम्यन्त पद है। इस सूत्र में 'षड्भ्यो लुक्' सूत्र से लुक् इस पद की अनुवृत्ति आती है।

यह उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र है तथा 'अतोऽम्' इस सूत्र का अपवाद है। अतएव ('अतोऽम्' के अपवाद के कारण) ह्रस्व अकारान्त शब्दों को छोड़कर अन्य सभी नपुंसक शब्दों से परे सु व अम् प्रत्यय का लोप इस उत्सर्ग सूत्र के द्वारा किया जाता है। इस सूत्र द्वारा किया जाने वाला लुक् भी एक प्रकार का लोप ही है अर्थात् जिस प्रकार लोप होने का फल 'अदर्शनं लोपः' से उसका अदर्शन हो जाना होता है उसी प्रकार लुक् होने पर भी अदर्शन होता है। परन्तु लोप तथा लुक् में अन्तर यह है कि प्रत्यय आदि के लोप तथा अदर्शन हो जाने पर भी 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इस परिभाषा सूत्र के सामर्थ्य से जो कार्य लोप के पहले सम्भव हो सकते थे वे कार्य लोप होने के बाद भी पूर्ववत् हो जातें हैं, किन्तु जिन प्रत्यय आदि को लुक् किया जाता है, उनसे लुक् होने से पहले जो अङ्ग सम्बन्धी कार्य हो सकते थे, वे कार्य 'न लुमताङ्गस्य' इस सूत्र के निषेध विधान के कारण लुक् होने के बाद नहीं होते हैं।

अकारान्त ज्ञान शब्द के बाद अब इकारान्त शब्दों का विवेचन आरम्भ होता है।

सूत्र – इकोऽचि विभक्तौ 7/1/73

वृत्ति – इगन्तस्य क्लीबस्य नुम् अचि विभक्तौ। वारिणी। वारीणि। न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे संबुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारे, हे वारि। आङो नाऽस्त्रियाम् – वारिणा। घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते –

सूत्रार्थ – अजादि विभक्ति के परे होने पर इगन्त नपुंसक अङ्ग को नुम् आगम होता है। 'न लुमताङ्गस्य' इस सूत्र को अनित्य मानने के पक्ष में सम्बुद्धि में सम्बुद्धि – निमित्तक गुण हो जाता है। 'आङो नाऽस्त्रियाम्' – सूत्र से टा होकर वारिणा (बनता है)। (ङित् प्रत्यय परे होने पर) 'घेर्ङिति' इस सूत्र से गुण प्राप्त होने पर।

उदाहरण – वारिणी। वारीणि। हे वारे। हे वारि।

व्याख्या – यह नुम् आगम विधायक विधि सूत्र है। इस सूत्र में तीन पद हैं – इकः. अचि और विभक्तौ। 'इकः' षष्ठ्यन्त पद है, 'अचि' सप्तम्यन्त पद है और 'नपुंसकात्' यह भी सप्तम्यन्त पद है। इस सूत्र में 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से झलचः इस पद की तथा 'इदितो नुम् धातोः' सूत्र से नुम् इस पद की अनुवृत्ति आती है।

वर्तमान सूत्र के द्वारा इगन्त (इक् प्रत्याहार – इ, उ, ऋ व लृ अन्त वाले) अङ्ग को नुम् आगम का विधान किया जाता है। नुम् के मकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से इनका लोप होकर केवल न् शेष बचता हैं। इसके मकार की इत् संज्ञा होने से यह मित् कहलाता है और 'मिदचोऽन्त्यात्परः' इस परिभाषा सूत्र के सहयोग से नुम् का न् अन्त्य अच् के बाद स्थित होगा।

न लुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे संबुद्धिनिमित्तो गुणः – सम्बोधन के एकवचन की 'एकवचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञा होती है। ध्यातव्य है कि वारि शब्द की अङ्ग संज्ञा होती है और यह ह्रस्वान्त भी है। सम्बुद्धि में वारि+स् इस अवस्था में 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु एवं अम् का लुक् होने पर वारि शब्द को 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इस सूत्र की सहायता से प्रत्ययलक्षण मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण की प्राप्ति होती है किन्तु 'न लुमताङ्गस्य' से लुमान् (लुक्, श्लु तथा लुप् – इन तीनों में 'लु' यह वर्णानुपूर्वी समान होने के कारण इनको लुमत्/लुमान् कहा जाता है) होने के कारण इस प्रत्ययलक्षण अङ्गसम्बन्धी कार्य का निषेध कर दिया जाता है। परन्तु इसके साथ ही महाभाष्यकार पतञ्जलि अनेक इष्ट प्रयोगों की सिद्धि के 'न लुमताङ्गस्य' सूत्र के द्वारा किए गए प्रत्ययलक्षण अङ्गसम्बन्धी कार्य के निषेध को अनित्य मानते हैं, अर्थात् यह निषेध कहीं होता है और कहीं नहीं होता है। इसके फलस्वरूप सम्बुद्धि में दो पक्ष होते हैं जिसके कारण सम्बुद्धि में दो रूप बनते हैं – प्रत्ययलक्षण मानकर गुण निषेध होने के पक्ष में – हे वारि तथा प्रत्ययलक्षण को अनित्य मानकर गुण होने के पक्ष में – हे वारे रूप बनता है।

वार्तिक – वृद्ध्यौत्त्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।

वारिणे। वारिणः। वारिणोः। नुमचिरेति नुट्। वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्।

अर्थ – पूर्वविप्रतिषेध से वृद्धि, औत्त्व, तृज्वद्भाव और गुण से पहले नुम् आगम होता है। 'नुमचिरेति' इस वार्तिक के नियम से पूर्वविप्रतिषेध होकर नुट् होता है।

उदाहरण – वारिणे। वारिणः। वारिणोः। वारीणाम्। वारिणि।

व्याख्या – इस वार्तिक का तात्पर्य यह है कि जिन प्रयोग – स्थलों में वृद्धि, औत्त्व, तृज्वद्भाव या गुण में से कोई एक तथा नुम् आगम की एक साथ यथा – 'अचो ञ्णिति 7/1/90)' सूत्र से वृद्धि व पूर्व सूत्र 'इकोऽचि विभक्तौ (7/1/73)' से नुम् आगम, 'अच्च घेः (7/3/19)' से औत्त्व व 'इकोऽचि विभक्तौ (7/21/73)' से नुम् आगम , 'तृज्वत्क्रोष्टुः' से तृज्वद्भाव व 'इकोऽचि विभक्तौ (7/1/73)' से नुम् आगम अथवा 'घेर्ङिति (7/3/111)' से गुण व 'इकोऽचि विभक्तौ (7/1/73)' से नुम् आगम की सहैव या युगपत् प्राप्ति हो रही हो अर्थात् दोनों विधियों में विप्रतिषेध या तुल्यबलविरोध हो रहा हो तो ऐसे स्थलों में पूर्वविप्रतिषेध से नुम् आगम ही होता है। ध्यातव्य है कि सामान्यतः विप्रतिषेध या तुल्यबलविरोध वाले इस प्रकार के स्थलों में अनियम की स्थिति होने पर 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इस परिभाषा सूत्र के सामर्थ्य से यह नियमन होता है कि इन विप्रतिषेध के स्थलों में पर सूत्र द्वारा विहित कार्य

ही होते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त सूत्रों द्वारा विहित वृद्धि, औत्त्व, तृज्वद्भाव या गुण में से कोई एक तथा नुम् आगम के एक साथ प्राप्त होने पर 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' सूत्र के नियम से उपर्युक्त परसूत्रों (अष्टाध्यायी के सूत्र क्रम से) द्वारा विहित वृद्धि आदि कार्य ही प्राप्त हो रहे थे और पूर्वसूत्र 'इकोऽचि विभक्तौ' से विहित नुम् आगम नहीं। ऐसी स्थिति में अनिष्ट अर्थात् असाधु प्रयोग सिद्ध न हों इसलिए वार्तिककार आचार्य कात्यायन यह वार्तिक बनाकर यह व्यवस्था करते हैं कि वृद्धि आदि उपर्युक्त चारों कार्य तथा नुमागम की युगपत् प्राप्ति अर्थात् विप्रतिषेध होने पर पूर्वविप्रतिषेध से नुमागम ही करना चाहिए।

'नुमचिरेति नुट्' अर्थात् 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक के द्वारा यह नियम किया जाता है कि षष्ठी बहुवचन में 'ह्रस्वनद्यापो नुट् (7/1/54)' से नुट् तथा 'इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् आगम की एकसाथ प्राप्ति अर्थात् विप्रतिषेध होने पर 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इस सूत्र से परकार्य न होकर पूर्वविप्रतिषेध के नियम से नुट् आगम होता है।

5.5 वारि शब्द के विविध रूपों की सिद्धि

1) **वारि** – वारि शब्द का अर्थ है जल। यह शब्द नपुंसकलिङ्ग एवं इकारान्त है। इस इकारान्त वारि शब्द के प्रथमा विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्शस्टाभ्याम्भिस्...' सूत्र से सु प्रत्यय होकर वारि+सु बना। अब वारि+सु इस अवस्था में सु के उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से इसका लोप तथा 'अदर्शनं लोपः' से अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर वारि+स् बनता है। अब वारि+स् इस अवस्था में सु के सकार को 'स्वमोर्नपुंसकात्' इस सूत्र से लुक् हो जाता है। इस प्रकार प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'वारि' यह रूप सिद्ध होता है।

2) **वारिणी** – वारि शब्द के प्रथमा विभक्ति के द्विवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से औ प्रत्यय होकर वारि+औ बना। औ विभक्ति के स्थान पर 'नपुंसकाच्च' से शी आदेश तथा शकार की इत् संज्ञा व लोप होकर वारि+ई बना। नपुंसक वारि की अङ्ग संज्ञा हो जाने के बाद रकारोत्तरवर्ती इकार होने से वारि इगन्त अङ्ग हुआ और इससे परे ई प्रत्यय रूपी अच् भी है। अतः प्रकृत सूत्र 'इकोऽचि विभक्तौ' से वारि को नुम् आगम हो जाता है। अनुबन्धलोपादि कार्य के पश्चात् नुम् के मित् होने के कारण 'मिदचोऽन्त्यात्परः' परिभाषा सूत्र की व्यवस्था से वारि के अन्तिम अच् रकारोत्तरवर्ती इकार के बाद न् होकर वारि+न्+ई बना। अब 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णत्व तथा वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणी' सिद्ध होता है।

3) **वारीणि** – वारि शब्द के प्रथमा विभक्ति के बहुवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से जस् प्रत्यय होकर वारि+जस् बना। अब वारि+जस् इस अवस्था में जस् के जकार की 'चुटू' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से लोप तथा 'अदर्शनं लोपः' से अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर वारि+अस् बनता है। अब वारि+अस् इस स्थिति में अस् के स्थान पर 'जश्शसोः शिः' इस सूत्र से शि आदेश हुआ तथा शि के शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा तथा

'तस्य लोपः' से लोप होकर वारि+इ बना। शि के इकार की 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। सर्वनामस्थान संज्ञा के बाद 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते नपुंसक अजन्त ज्ञान को नुम् आगम होता है। नुम् के मकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर दोनों का 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है और फिर नुम् का न् शेष रहता है। अब 'मिदचोऽन्त्यात् परः' सूत्र के सहयोग से रकारोत्तरवर्ती इकार का अन्तावयव होता है अर्थात् उसके बाद नुम् का नकार स्थित होगा। इस व्यवस्था के बाद वारि+न्+इ बना। अब वारिन् के अन्तिम अल् न् से पूर्व के वर्ण इ (वारि के रकारोत्तरवर्ती) की 'अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा' सूत्र से उपधा संज्ञा होती है और फिर उसे सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' दीर्घ होकर वारीन्+इ बना। पुनः वर्ण सम्मेलन होकर तथा 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णत्व होकर प्रथमा के बहुवचन में 'वारीणि' यह रूप सिद्ध होता है।

4) **हे वारि** – वारि शब्द से सम्बोधन एकवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से सु प्रत्यय, सु के उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से इसका लोप तथा 'अदर्शनं लोपः' से अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर वारि+स् बनता है। अब वारि+स् इस अवस्था में सु के सकार को 'स्वमोर्नपुंसकात्' इस सूत्र से लुक् हो जाता है। ह्रस्वान्त वारि शब्द की 'यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' सूत्र से अङ्ग संज्ञा होती है। सम्बोधन के एकवचन की 'एकवचनं सम्बुद्धिः' सूत्र से सम्बुद्धि संज्ञा भी होती है। अब 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इस सूत्र की सहायता से प्रत्ययलक्षण मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' से गुण की प्राप्ति होती है किन्तु 'न लुमताङ्गस्य' से लुमान् होने के कारण इस प्रत्ययलक्षण अङ्गसम्बन्धी कार्य का निषेध कर दिया जाता है। इस प्रकार 'हे वारि!' यह रूप सिद्ध होता है।

5) **हे वारिणी!** – वारि शब्द के सम्बोधन के द्विवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से औ प्रत्यय होकर वारि+औ बना। औ विभक्ति के स्थान पर 'नपुंसकाच्च' से शी आदेश तथा शकार की इत् संज्ञा व लोप होकर वारि+ई बना। नपुंसक वारि की अङ्ग संज्ञा हो जाने के बाद रकारोत्तरवर्ती इकार होने से वारि इगन्त अङ्ग हुआ और इससे परे ई प्रत्यय रूपी अच् भी है। अतः प्रकृत सूत्र 'इकोऽचि विभक्तौ' से वारि को नुम् आगम हो जाता है। अनुबन्धलोपादि कार्य के पश्चात् नुम् के मित् होने के कारण 'मिदचोऽन्त्यात्परः' परिभाषा सूत्र की व्यवस्था से वारि के अन्तिम अच् रकारोत्तरवर्ती इकार के बाद न् होकर वारि+न्+ई बना। अब 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णत्व तथा वर्णसम्मेलन तथा हे का पूर्वप्रयोग होकर 'हे वारिणी!' सिद्ध होता है।

6) **हे वारीणि!** – वारि शब्द के सम्बोधन के बहुवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से जस् प्रत्यय होकर वारि+जस् बना। अब वारि+जस् इस अवस्था में जस् के जकार की 'चुटू' सूत्र से इत् संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप तथा 'अदर्शनं लोपः' से अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर वारि+अस् बनता है। अब वारि+अस् इस स्थिति में अस् के स्थान पर 'जश्शसोः शिः'

इस सूत्र से शि आदेश हुआ तथा शि के शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से लोप होकर वारि+इ बना। शि के इकार की 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। सर्वनामस्थान संज्ञा के बाद 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते नपुंसक अजन्त ज्ञान को नुम् आगम होता है। नुम् के मकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर दोनों का 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है और फिर नुम् का न् शेष रहता है। अब 'मिदचोऽन्त्यात् परः' सूत्र के सहयोग से रकारोत्तरवर्ती इकार का अन्तावयव होता है अर्थात् उसके बाद नुम् का नकार स्थित होगा। इस व्यवस्था के बाद वारि+न्+इ बना। अब वारिन् के अन्तिम अल् न् से पूर्व के वर्ण इ (वारि के रकारोत्तरवर्ती) की 'अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा' सूत्र से उपधा संज्ञा होती है और फिर उसे सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' दीर्घ होकर वारीन्+इ बना। पुनः वर्ण सम्मेलन, 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णत्व तथा हे का पूर्वप्रयोग होकर 'हे वारीणि!' यह रूप सिद्ध होता है।

7) **वारि** – वारि शब्द के द्वितीया विभक्ति के एकवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से अम् प्रत्यय होकर वारि+अम् बना। अब वारि+अम् इस अवस्था में अम् के मकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत् संज्ञा की प्राप्ति होती है जिसका विभक्ति सम्बन्धी मकार होने के कारण 'न विभक्तौ तुस्माः' इस सूत्र से निषेध हो जाता है। अब वारि+अम् इस अवस्था में अम् का 'स्वमोर्नपुंसकात्' इस सूत्र से लुक् हो जाता है। इस प्रकार द्वितीया विभक्ति के एकवचन में 'वारि' यह रूप सिद्ध होता है।

8) **वारिणी** – वारि शब्द के द्वितीया विभक्ति के द्विवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से औट् प्रत्यय, टकार की इत् संज्ञा व लोप होकर वारि+औ बना। औ विभक्ति के स्थान पर 'नपुंसकाच्च' से शी आदेश तथा शकार की इत् संज्ञा व लोप होकर वारि+ई बना। नपुंसक वारि की अङ्ग संज्ञा हो जाने तथा रकारोत्तरवर्ती इकार होने से वारि इगन्त अङ्ग हुआ और इससे परे ई प्रत्यय रूपी अच् भी है। अतः प्रकृत सूत्र 'इकोऽचि विभक्तौ' से वारि को नुम् आगम हो जाता है। अनुबन्धलोपादि कार्य के पश्चात् नुम् के मित् होने के कारण 'मिदचोऽन्त्यात्परः' परिभाषा सूत्र की व्यवस्था से वारि के अन्तिम अच् रकारोत्तरवर्ती इकार के बाद न् होकर वारि+न्+ई बना। अब 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णत्व तथा वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणी' सिद्ध होता है।

9) **वारीणि** – वारि शब्द के द्वितीया विभक्ति के बहुवचन की विवक्षा में 'स्वौजस्मौट्...' सूत्र से शस् प्रत्यय होकर वारि+शस् बना। अब वारि+शस् इस अवस्था में शस् के शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा, 'तस्य लोपः' से लोप तथा 'अदर्शनं लोपः' से अदर्शन संज्ञा आदि कार्य होकर वारि+अस् बनता है। अब वारि+अस् इस स्थिति में अस् के स्थान पर 'जश्शसोः शिः' इस सूत्र से शि आदेश हुआ तथा शि के शकार की 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से इत् संज्ञा तथा 'तस्य लोपः' से लोप होकर वारि+इ बना। शि के इकार की 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र से सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। सर्वनामस्थान संज्ञा के बाद 'नपुंसकस्य झलचः' सूत्र से

सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते नपुंसक अजन्त ज्ञान को नुम् आगम होता है। नुम् के मकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत् संज्ञा होकर दोनों का 'तस्य लोपः' से लोप हो जाता है और फिर नुम् का न् शेष रहता है। अब 'मिदचोऽन्त्यात् परः' सूत्र के सहयोग से रकारोत्तरवर्ती इकार का अन्तावयव होता है अर्थात् उसके बाद नुम् का नकार स्थित होगा। इस व्यवस्था के बाद वारि+न्+इ बना। अब वारिन् के अन्तिम अल् न् से पूर्व के वर्ण इ (वारि के रकारोत्तरवर्ती) की 'अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा' सूत्र से उपधा संज्ञा होती है और फिर उसे सर्वनामस्थान संज्ञक इ के परे रहते 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' दीर्घ होकर वारीन्+इ बना। पुनः वर्ण सम्मेलन होकर तथा 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' से णत्व होकर 'वारीणि' यह रूप सिद्ध होता है।

10) **वारिणा** – तृतीया एकवचन में वारि शब्द से टा प्रत्यय, अनुबन्धलोप अङ्ग संज्ञा तथा 'शेषो घ्यसखि' सूत्र से घि संज्ञादि कार्य होकर वारि+आ बना। इस स्थिति में इगन्त अङ्ग से अजादि विभक्ति परे होने के कारण 'इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् आगम तथा 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से ना की एक साथ प्राप्ति होती है, विप्रतिषेध की इस अवस्था में 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इस परिभाषा सूत्र की व्यवस्था से पर सूत्र होने के कारण 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से ना होकर वारि+ना बना। अब णत्व होकर 'वारिणा' यह रूप सिद्ध होता है।

11)**वारिभ्याम्** – तृतीया द्विवचन में वारि शब्द से भ्याम् प्रत्यय तथा वर्णसम्मेलन होकर 'वारिभ्याम्' बनता है।

12) **वारिभिः** – तृतीया बहुवचन में वारि शब्द से भिस् प्रत्यय तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'वारिभिः' बनता है।

13) **वारिणे** – चतुर्थी एकवचन में वारि शब्द से ङे प्रत्यय, अनुबन्धलोप अङ्ग संज्ञा तथा घि संज्ञा आदि होकर वारि+ए बना। ङकार की इत् संज्ञा होने से ए ङित् है अतः घि संज्ञक वारि शब्द से परे ङित् प्रत्यय ए के होने के कारण 'घेर्ङिति' सूत्र से गुण तथा वारि इस इगन्त अङ्ग से अजादि विभक्ति ए के परे होने से 'इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् आगम की युगपत् प्राप्ति होने से यहाँ विप्रतिषेध का प्रसङ्ग बन जाता है। अब 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' सूत्र के अनुसार 'घेर्ङिति' के परसूत्र होने के कारण गुण की प्राप्ति होने पर 'वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्व – विप्रतिषेधेन' इस वार्तिक के नियम से नुम् आगम तथा अनुबन्धलोप होकर वारि+न्+ए बना। पुनः णत्व व वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणे' यह रूप सिद्ध होता है।

14) **वारिभ्याम्** – चतुर्थी द्विवचन में वारि शब्द से भ्याम् प्रत्यय तथा वर्णसम्मेलन होकर 'वारिभ्याम्' बनता है।

15) **वारिभ्यः** – चतुर्थी बहुवचन में वारि शब्द से भ्यस् प्रत्यय एवं भ्यस् के सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'वारिभ्यः' यह रूप सिद्ध होता है।

16) वारिणः – पंचमी एकवचन में वारि शब्द से ङसि प्रत्यय, अनुबन्धलोप आदि होकर वारि+अस् बना। 'वृद्धयौत्त्वदृतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक से नुमागम तथा अनुबन्धलोपादि होकर वारि+न्+अस् बना। पुनः णत्व, रुत्वविसर्ग व वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणः' यह रूप सिद्ध होता है।

17) वारिभ्याम् – पंचमी द्विवचन में वारि शब्द से भ्याम् प्रत्यय तथा वर्णसम्मेलन होकर वारिभ्याम् बनता है।

18) वारिभ्यः – पंचमी बहुवचन में वारि शब्द से भ्यस् प्रत्यय एवं भ्यस् के सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'वारिभ्यः' यह रूप सिद्ध होता है।

19) वारिणः – षष्ठी एकवचन में वारि शब्द से ङस् प्रत्यय, अनुबन्धलोप आदि होकर वारि+अस् बना। 'वृद्धयौत्त्व – तृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक से नुमागम तथा अनुबन्धलोपादि होकर वारि+न्+अस् बना। पुनः णत्व, रुत्वविसर्ग व वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणः' यह रूप सिद्ध होता है।

20) वारिणोः – षष्ठी द्विवचन में वारि शब्द से ओस् प्रत्यय होकर वारि+ओस् बना। 'वृद्धयौत्त्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक से नुमागम तथा अनुबन्धलोप होकर वारि+न्+ओस् बना। पुनः णत्व, रुत्वविसर्ग व वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणोः' यह रूप सिद्ध होता है।

21) वारीणाम् – वारि शब्द से षष्ठी बहुवचन की विवक्षा में आम् प्रत्यय होकर वारि+आम् बना। इस स्थिति में ह्रस्वान्त वारि शब्द से 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से नुट् आगम की प्राप्ति होती है और वारि इस इगन्त अङ्ग से आम् इस अजादि प्रत्यय के परे होने के कारण 'इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् आगम की एकसाथ प्राप्ति अर्थात् विप्रतिषेध की स्थिति हो जाती है। विप्रतिषेध की इस स्थिति में 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इस सूत्र से 'इकोऽचि विभक्तौ' के परसूत्र होने के कारण नुम् आगम की प्राप्ति होने पर 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक से पूर्वविप्रतिषेध होकर नुट् आगम तथा अनुबन्धलोप व वर्णसम्मेलन होकर वारि+नाम् बना। इस अवस्था में 'नामि' से दीर्घ, 'अट्कुप्वाङ्...' से णत्व होकर 'वारीणाम्' यह रूप सिद्ध होता है।

22) वारिणि – वारि शब्द से सप्तमी एकवचन में ङि, अनुबन्धलोप, नुम्, अनुबन्धलोप, णत्व एवं वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणि' यह रूप सिद्ध होता है।

23) वारिणोः – सप्तमी द्विवचन में वारि शब्द से ओस् प्रत्यय होकर वारि+ओस् बना। 'वृद्धयौत्त्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक से नुमागम तथा अनुबन्धलोप होकर वारि+न्+ओस् बना। पुनः णत्व, रुत्वविसर्ग व वर्णसम्मेलन होकर 'वारिणोः' यह रूप सिद्ध होता है।

24) वारिषु – वारि से सप्तमी बहुवचन में सुप्, अनुबन्धलोप एवं 'आदेशप्रत्यययोः' से षत्व होकर 'वारिषु' यह रूप सिद्ध होता है।

अजन्त नपुंसकलिङ्ग प्रकरण समाप्त।

5.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के द्वारा हमने लघुसिद्धान्तकौमुदी के अजन्त नपुंसकलिङ्ग भाग का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई में पाठ्यक्रम के अनुरोध से नपुंसकलिङ्ग के प्रतिनिधि के रूप में चयनित अकारान्त ज्ञान एवं इकारान्त वारि शब्द का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। इस प्रकार इन दोनों शब्दों के माध्यम से नपुंसकलिङ्ग के शब्दों के रूप कैसे होते हैं? यह भी भली–भांति जाना। यद्यपि नपुंसकलिङ्ग के शब्दों का स्वरूप प्रायः पुँल्लिङ्ग की तरह ही होता है फिर भी जिन स्थलों पर इनमें परस्पर असमानता देखी जाती है, उन स्थल–विशेषों का विस्तारपूर्वक पर्यालोचन इस इकाई में करने का प्रयत्न किया गया है।

इस क्रम में सबसे पहले ज्ञान शब्द के रूप किस प्रकार से सिद्ध होते हैं? यह विवरण किया गया। फिर नपुंसकलिङ्ग में विभक्ति प्रत्ययों के स्थान पर होने वाले आदेश कौन–कौन से हैं? नपुंसकलिङ्ग में सर्वनामस्थान संज्ञा कहाँ होती है? प्रत्ययलोप की स्थिति में होने वाले प्रत्ययाश्रित कार्यों के निषेध स्थल कौन कौन से हैं? असमानपद होने पर भी कहाँ णत्वविधान संभव हो पाता है? नुमागम कहाँ–कहाँ होता है? इन सारे विषयों को विस्तार से समझा। इन सारी विधियों से सम्बन्धित सूत्रों व वार्तिकों, उनके अर्थ व व्याख्या और उदाहरणों को भली–भांति जाना। साथ ही इन शब्दों की रूपसिद्धि प्रक्रिया को जानने के साथ इनके व्यावहारिक प्रयोग हेतु आधार प्राप्त किया।

5.7 शब्दावली

प्रत्ययलक्षण – कई कार्य प्रत्यय को मानकर होते हैं। जैसे सम्बुद्धि में वारि+स् इस अवस्था में 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु एवं अम् का लुक् होने पर भी 'ह्रस्वस्य गुणः' से सम्बुद्धि को निमित्त मानकर गुण की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु सम्बुद्धि प्रत्यय का लुक् हो चुका है। ऐसी स्थिति में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' यह परिभाषा सूत्र कहता है कि – प्रत्यय के लुप्त हो जाने पर भी तदाश्रित कार्य हो जाते हैं। अर्थात् 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इस परिभाषा सूत्र के सामर्थ्य से जो कार्य लोप होने से पहले हो सकते थे वे कार्य लोप होने के बाद भी पूर्ववत् हो जाते हैं। तब उक्त सूत्र की सहायता से प्रत्ययलक्षण मानकर 'ह्रस्वस्य गुणः' से पुनः गुण की प्राप्ति हो जाती है।

लुमत्/लुमान् – ध्यातव्य है कि लुक्, श्लु तथा लुप् शब्दों के साक्षात् उच्चारण के द्वारा जिन प्रत्ययों का अदर्शन किया जाता है उनकी 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' सूत्र द्वारा क्रमशः लुक्, श्लु तथा लुप् संज्ञा होती है। इन तीनों शब्दों में क्रमशः पठित क्+श् तथा प् वर्ण भिन्न–भिन्न हैं एवं लु यह वर्णानुपूर्वी समान है। इन तीनों प्रत्ययों का उच्चारण लाघव–पूर्वक करने के लिए

वर्णानुपूर्वी (लु) की इसी समानता को आधार बनाकर सूत्रकार पाणिनि ने 'न लुमताङ्गस्य' सूत्र में इन्हें 'लुमता' (मूल शब्द लुमत्/लुमान् इस प्रत्याहार के रूप में (जिसका अर्थ – लु वाला है, के तृतीया एकवचन का रूप) कहा है।

पूर्वविप्रतिषेध – सामान्यतः विप्रतिषेध के स्थलों में अनियम की स्थिति होने पर 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' इस परिभाषा सूत्र से पर सूत्र द्वारा विहित कार्य ही होते हैं। जैसे चतुर्थी एकवचन में वारि+ए इस स्थिति में 'घेर्ङिति' सूत्र से गुण तथा वारि इस इगन्त अङ्ग से अजादि विभक्ति ए के परे होने से 'इकोऽचि विभक्तौ' से नुम् आगम की युगपत् प्राप्ति होने पर यहाँ विप्रतिषेध का प्रसङ्ग बन जाता है। अब 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' सूत्र के अनुसार 'घेर्ङिति' के पर सूत्र होने के कारण गुण की प्राप्ति होने पर असाधु प्रयोग की सिद्धि की आशंका के निवारण हेतु 'वृद्ध्यौत्त्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन' इस वार्तिक के द्वारा यह नियम करते हैं कि वृद्धि आदि उपर्युक्त चारों कार्य तथा नुमागम की युगपत् प्राप्ति अर्थात् विप्रतिषेध होने पर पूर्वविप्रतिषेध से नुमागम ही करना चाहिए। अब पूर्वविप्रतिषेध के नियम से नुम् आगम होकर वारिणे यह रूप सिद्ध होता है।

इस प्रकार कुछ विशेष इष्ट प्रयोगों की सिद्धि हेतु विप्रतिषेध के स्थलों में जब पर सूत्र द्वारा कार्य न होकर पूर्व सूत्र द्वारा कार्य सम्पन्न होता है तो उसे वैयाकरणिक परम्परा में पूर्वविप्रतिषेध कहते हैं।

सर्वनामस्थान संज्ञा – सर्वनामस्थान संज्ञा का विधान करने वाला मुख्य सूत्र 'सुडनपुंसकस्य' है। इस के द्वारा नपुंसकलिङ्ग से भिन्न सुट् प्रत्याहार – अर्थात् सु, औ, जस्, अम् और औट् इन पांच प्रत्ययों की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है। इस प्रकार 'सुडनपुंसकस्य' सूत्र के द्वारा नपुंसकलिङ्ग में सर्वनामस्थान संज्ञा का विधान सम्भव ही नहीं था और सुट् प्रत्याहार के अन्तर्गत न आने के फलस्वरूप शस् प्रत्यय की तो किसी भी लिङ्ग में यह संज्ञा होती ही नहीं है। अतः इष्ट प्रयोगों की सिद्धि के लिए नपुंसकलिङ्ग में सर्वथा अप्राप्त सर्वनामस्थान संज्ञा जस् व शस् – इन दोनों प्रत्ययों को विहित हो जाए – इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए सूत्रकार ने 'शि सर्वनामस्थानम्' सूत्र द्वारा जस् व शस् के स्थान पर होने वाले आदेश शि की सर्वनामस्थान संज्ञा की है।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।
9. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।
10. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।
11. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।

12. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
13. वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन।
14. Apte, V.S., The Students* Guide to Sanskrit Composition, Chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi.
10. Kale, M.R., Higher Sanskrit Grammar, MLBD, Delhi.
11. Kanshi Ram, Laghusiddhantkaumudi, (Vol- 1&3), MLBD, Delhi, 2009.

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. 'नपुंसकाच्च' सूत्र का व्याख्या कीजिए।
2. 'वारीणि' पद की रूपसिद्धि की प्रक्रिया स्पष्ट कीजिए।
3. नपुंसकलिङ्ग में विभक्ति प्रत्ययों के स्थान पर कौन–कौन से आदेश होते हैं?

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY